REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

आधुनिक हिन्दी कहानी - कुछ आधुनिक निस्संग चेहरे

डां. टी. श्रीदेवी
प्राध्यापिका, महात्मा गाँधी कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम

आज के भौतिकवादी युग में मानव के बीच कम से कम एक ही बात में समानता है, वह है निस्संगता- आधुनिक मानव मन की निस्संगता। यहाँ सभी बुजुर्ग निस्संग है, सभी युवक निस्संग हैं , सभी बच्चे निस्संग हैं।

संबन्धों का विघटन सहते-सहते बुजुर्ग निस्संगता रूपी छिलके के अन्दर छिपते हैं। वे सबेरे उठते हैं, खाते हैं, पीते हैं, अपने कमरे की खिड़की पर हाथ रखकर सुदूर देखते हैं। यह दूरी कभी -कभी बुढापे में बचपन की ओर की दूरी है, कभी कभी बूढापे से भविष्य की ओर की दूरी है। दोनों दूरियों में खिड़की के सामने वे एक समान दिखाई देते हैं। निस्संग चेहरेवाले बूढे।

युवक जीवन से संघर्ष करते करते अंत में निस्संगता रूपी चादर ओढने केलिए विवश हो उठते हैं। व्यक्ति का अहं, सामाजिक -संघर्ष अपने आपका अन्तर्विरोध इन सारी बातों का असर पहले-पहल इन युवकों पर ही पडता है। संघर्ष के विरुद्द लडने के अलावा ये युवजन संघर्ष झेलते-झेलते चले जाते हैं। इसके वे आदी हो गये हैं। यह तो इनका 'लैफ स्टैल' हो गया है और यह उनकी पसंद भी है।

प्रतिक्रियाविहीन अपनी पूर्वपीढी को देखते हुए पलनेवाली आगामी पीढी भी प्रतिक्रियाविहीन बनती है । केवल पाठ्य पुस्तकों के अन्दर मुँह छिपाते-छिपाते बच्चे निस्संग होते हैं। कम्प्यूटर के सामने, टि.वि.के सामने, स्कूल बस की प्रतीक्षा में घडे होनेवाले लडकों की कतार में हम समान चेहरे देख सकते हैं। रोबोट जैसे निस्संग चेहरे अपने मन में जो प्रतिक्रिया है उसको दबाते-दबाते अंत में ये चेतनाहीन बनते हैं।

जन -जीवन की बाह्य और आतंरिक स्थितियों में आ गयी क्रान्तिकारी दब्दीलियों से अवगत और सवंग समकालीन हीन्दी कहानीकार इन निस्संग चेहरों को देख रहे हैं और इनका मनोवैज्ञानिक, मंथन के साथ प्रस्तुतीकरण भी करते हैं। ये इस तरह का एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी हमारे सामने प्रस्तुत करते है कि आधुनिक मानव सबके प्रति निस्संग है। अत: समकालीन मानव की सबसे बडी विसंगति यह निस्संगता है।

निस्संगता किसी खास कालविशेष का मानसिक व्यापार नहीं है। निस्संग मानव को सभी कालों में, सभी दशकों में, सभी पलों में हम देख सकते हैं। लेकिन अस्सी के बाद के समाज का एक या दो व्यक्ति नहीं, लगभग पूरा समाज इसको अपने 'सिंबल' के रूप में स्वीकारने का दृश्य हम देख रहे हैं। समकालीन समाज के अन्तरविरोधों का, विसंगतियों का कारण ढूँढकर निस्संग चेहरेवाले अनेक पात्रों के हिन्दी के अस्सी के बाद के कहानीकार प्रस्तुत करते हैं।

मिथिलेश्वर की कहानी 'पहली हँसी' का नायक रूखे, और खूरदरे आधुनिक जीवन रूपी पत्थर पर टकराकर चूर-चूर बननेवाले व्यक्तित्व का एक कल्पनाजीवी कहानीकार है, बेरोजगार युवक है। कहानी लिखकर मिलनेवाली सीमित आमदनी से जीवन यापन करने में अपने को असमर्थ पाते हुए वह इस प्रकार सोचता है- जैसे उसकी बोल्नी बंद हो गयी हो। ऐसे विकल्पहीन क्षण उसके जीवन में रोज़ आते हैं। लेकिन वेदनाओं का मूक, पियक्कड़ वह आँख मूँदकर सब कुछ चुपचाप पी जाता हैं। अंत में पुरस्कार मिलने को मामूली आदमी की कहानी लिखने केलिए तैयार होता हैं। उसको लगता है वह खुद मामूली आदमी है और उसने संपादक के सामने जाकर कहा कि मैं एक बहुत बढिया कहानी हूँ। अपनी सारी चिन्ताओं पर जब नायक को स्वयं हँसी आती है तब पहली हंसी में ही कहानी का अंत होता हैं। यह तो आधुनिक निस्संग मन की हँसी हैं। इस नायक के मन में समाज के विरुद्ध, अपनी जीवन विसंगतियों के विरुद्ध विरोध है। लेकिन वह प्रकट करने की मानसिक शक्ति

उसमें नहीं है। प्रकट करता तो भी कोई बात नहीं है। मन में एक ही भाव रहता है।- निस्संगता। वह हँसी का रूप लेकर मुँह में ढलकता है।

सूर्यबाला की कहानी गीत चौधरी का आखिरी सवाल की गीता चौधरी पारिवारिक विसंगतियों में ऊबकर निस्संगता रूपी चादर ओढनेवाली छोटी लडकी हैं। गीता चौधरी जो पहले क्लास की अव्वल दर्जा की विद्यार्थिनी थी अब सबसे बढतर होकर टीचर से सवाल उठाती है कि इस हालत में मैं क्या कर सकती हूँ? ताकि उसके बडे परिवार में सभी केलिए वह बोझ हैं। पुत्र की सीमित आमदनी में जीनेवाले माता पिता भी गीता चौधरी की देखभाल न कर सकते हैं। टीचर 'समाज को बदलने के इन्तज़ार में' उसको आश्वस्त कराती है। लेकिन गीता चौधरी केलिए सामाज कुछ नहीं है। नई पीढी में इस प्रकार संबन्धों के बिखराव के कारण अकेले और निस्संग बनने वाले अनेक बच्चे हम देख सकते हैं। और इनकी समस्याओं को सुलझाने केलिए कहानीकार समाज को बदलने का आह्वान देते हैं।

लेकिन सुधा अरोडा की 'महानगर की मैथिली' एक अलग श्रेणी के निस्संग बच्चे का प्रतिनिधित्व करती है जो बचपन में ही पिरदेश के कारण बुजर्गावस्था को स्वीकारती है। महानगर की आधुनिक बेटी मैथिली अपनी छोटी आयु में ही संघर्ष सहते -सहते उसके साथ समरसता स्थापित करती है। जीवन उस केलिए 'रूटीन' हो गया है। अकेले दिन काटती है। सख्त बुखार में भी ''ममी, जाओ आँफिस ! पापा जाओ ऑफिस! हम भी जाएंगे कहती है ।'' [1] इसी हालत में माता पिता भी निस्संग होते हैं। ऑफीस जाने के अलावा उस महानगर में जीने के लिए कोई अन्य रास्ता नहीं है। जिन्दगी इस मध्यवर्गीय दम्पतियों को बच्चे के प्रति तटस्थ रहकर ऑफिस जाने केलिए विवश कराती है।

संबन्धों में आ गये बदलाव, पीढी-पीढी का अन्तर, आर्थिक विषमता, आर्थिक लाभ ये सारी बातें मानव को अपने -आप में सीमित रहने की प्रेरणा देती हैं। सूर्यबाला की कहानी निर्वासित में पुत्र माँ-बाप का बँटवारा इसलिए करते हैं- अब जब दो बेटे हैं, तो एक ही दोनों का खर्च उठाये, ठीक नहीं लगता न? [2] .... जीवन भर एक साथ जीने के बाद बूढापे में अलग होकर जीना कितना दर्दनाक है। लेकिन यहाँ निरालंब माँ-बाप केलिए और कोई रास्था नहीं है। इनका क्रन्दन सुनने केलिए यहाँ कोई नहीं है। उतराधुनिक युग में इस प्रकार निस्संग होकर जीनेवाले अनेक बूढों को हम चारों तरफ़ देख सकते है। इनके लिए सब कुछ हैं, लेकिन जो कुछ ये चाहते हैं यह उनको मिलता नहीं। ये घुट-कर रह जाते हैं और निसंग होते हैं।

अधिकाधिक भौतिकतावादी या व्यक्तिवादी होनेवाले संवातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश में लोगों की चिन्ताओं में अनेक बदलाव हम देख सकते हैं। पल भर में चिन्ताओं बदलती है रहती हैं। चिन्ता अधिकाधिक व्यक्तिवादिता की ओर जाती हैं। ममता कालिया की कहानी 'बीमारी' की बहन भाई से अलग होकर एक प्लेट में अकेली रहती है। इसके माँ-बाप नहीं है। भाई इसकी देखभाल न करने पर भी बहिन को कोई शिकायत नहीं है। बहिन की बीमारी में इलाज केलिए जो खर्च हुआ उसका बिल जब भाई बहिन को देता है तब वह उतने रुपये के 'चेक' भाई को देती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इस रकम में वे रुपये भी आते हैं जिन्हें खर्च करके भाई बहन को फल लाया था। देखिए यहाँ भाई का मन निस्संग है, बहिन का मन निस्संग है। बहिन सोचती है- उसमें उन पैसों का हिसाब था, जो इधर-उधर मेरे सिलसिले में आने -जाने में खर्च हुए थे और जो फल मेरे लिए लाए गये थे। यहाँ इसप्रकार करने से भाई के मन में और इसप्रकार होने से बहिन के मन में विषाद की छाया ही नहीं है। यह तो सख्त निस्संगता कही जा सकती है।

भौतिकता की अंधी-दौड में जब सामाजिक रिश्ते होते जा रहे हैं, तब मानव निस्संग बन बैठते हैं। यहाँ आधुनिक पति, आधुनिक पत्नी और आधुनिक पुत्र निस्संग है। सूर्यबाला की 'सुनो समित,

सुनो सुलभ' कहानी का नायक समित के साथ जीते जीते नायिका नारी सहज भावनायें छोडने केलिए विवश होती है और अंत में आधुनिक नारी बन जाती है। विज्ञान की प्रगति के साथ चलनेवाली पति समित का जीवन जब केवल धन-दौलत की आशा में अमेरिका में स्थिर हो जाता है तब यहाँ सुदूर भारत में पत्नी विनिता अकेली हो जाती हैं। तब भी उसके लिए एक आशा है, पुत्र का पालन -पोषण। पुत्र पहले पिता के विरुद्ध था, लेकिन जो बडा हो गया तब वह भी आधुनिक बन गया। रिश्तों को छोडकर वैयक्तिक उन्नति के लिए वह भी पिता के यहाँ अमेरिका जाने को तैयार हो जाता है। पिता उसको एकसेलैंट बनाना चाहते हैं। पिता का कथन है- ज़िन्दगी अब सिर्फ दो व्यक्तियों के एक दूसरे में सिमटे रहनेवाली फ़ालतू- सी ख़ामखयाली नहीं रह गई है। दुनिया अब बहुत आगे बड चुकी है। उसमें तेज़ी से आगे न बढ जाने पर पीछे छूट जाने का अन्देशा रहता है।...[1] कुछ भावुक सा पिझडापन और बुद्धि की समझदारी को नकारने की बचकानी आदत। इसलिए तो हम पिछडे हुए हैं। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि विनीता एक विशेष तरह की मानसिक स्थिति को अपनाती है। पति और बेटे से वह छुटकारा पाना चाहती है। यहाँ पति आर्थिक लाभ और बौद्धिक उन्नयन प्राप्त करने केलिए और पुत्र खुद एकसेलेंट बनने केलिए प्रयत्नशील है। पत्नी इन सबसे ऊभकर निस्संग बन जाती है। एक दूसरे के प्रति यहाँ कोई सोच विचार नहीं है।

बढते हुए औद्योगीकरण के फलस्वरूप आज की जनता नगरीय और महानगरीय जीवन पसन्द करते लगी है। नौकरी पेशे या अन्य उद्योग-धन्धों में लगने की कोशिश में तो बहुत से लोगों को बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई। लेकिन यहाँ की भीड और व्यस्तता ने जीवन को यन्त्र सा बना दिया। इसके फलस्वरूप व्यक्ति व्यक्ति का संबन्ध टूटने लगा है। एक सीमा तक इसके पीछे पाश्चात्य जीवन का गलत प्रभाव भी होता है। एक दीवार के इधर-उधर रहने पर भी एक दूसरे से बिलकुल अजनबी रहनेवाले दो परिवार की कहानी है ज्ञानरंजन की 'फेंस के इधर उधर'। यहाँ नये आनेवाले पडोसियों के बारे में नायक का बेखवर होना ही कहानी की कयावस्तु है। नये पडोसी लोग नायक और उसके परिवारवालों को एक क्षण केलिए भी नहीं देखते। वे अपने -आप में व्यस्त हैं। हमेशा आनन्द ही आनन्द में रहते हैं। यहाँ की लड़की की शादी हुई तो भी पडोस वालों को खबर नहीं। युवती लड़की माता-पिता के साथ ठहाका मारकर रहती है। हँसते-हँसते उसकी छाती भी मुक्त दिखाई देने लगती है। पडोसियों के देखने-परखने का कोई ध्यान ये लोग नहीं रखते। इनकेलिए दुसरे लोग कुछ नहीं है। ये सारे समाज के प्रति निस्संग रहते हैं। यह सख्त निस्संगता जीवन संघर्ष के वजह से नहीं बल्कि आधुनिक बनने के 'सिंबल' के रूप में ये लोग स्वीकारते हैं। इस प्रकार की निस्संगता 'कैंसर' के रूप में समाज के कोशों को काटती रहती है। इस कहानी में शादी के अवसर पर नववधु दो बूँद आँसू भी नहीं बहाती। नायक की माता चकित रह जाती है। माता का कथन है- ''आजकल सभी ऐसे होते है। पेट काटकर जिन्हें पाला पोसा उन्हीं की आँखों में दो बूँद आँसू नहीं''। यहाँ युवती के माता पिता भी लडकी की विदाई चैन से निस्संग होकर रहते हैं।[1]

मंजुल भगत की 'तीसरी औरत' का नायक पत्नी और बडे पुत्र के रहते हुए भी दूसरी और तीसरी औरतों के साथ संबन्ध जोडता है। उसकी पत्नी यह सब जानती है। लडकी की शादी में जब यह दूसरी-तीसरी आती हैं, तब भी पत्नी उनके साथ विरोध प्रकट नहीं करती। उल्टे उन पर ज़रा भी ध्यान नहीं देती। निस्संग भाव से अपने काम में व्यस्त रहती है। यह तो आधुनिक नारी की सख्त निस्संगता है।

कोई भी घटना आज मनुष्य को चोट नहीं पहूँचाती। सभी घटनाओं को लोग एक क्षण तक निस्संग देखते हैं, कुछ लोग रोने का अभिनय करते हैं और अपने-अपने काम में लग जाते हैं। वीरेन्द्र सक्सेना की 'हत्या' नामक कहानी एक हत्या और उसके इर्द-गिर्द घूमनेवाले कुछ निस्संग मनुष्यों के रंगीन अभिनयों को मूर्त करती है। जीवन के सबसे बडी दर्दनाक घटना है 'मृत्यु'। इसके सामने भी आधुनिक मनुष्य अब निस्संग होकर रहते हैं। मरना-मारना हत्या करना और उस पर शोक मनाना नित्य का फैशन हो गया है। इन सब के सामने समकालीन जनता निस्संग है।

इस प्रकार निस्संगता के कई चेहरे अस्सी के बाद की कहानियों में हम देख सकते हैं। ये समाज के कई स्तरों के लोगों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। यहाँ कागज़ पर लिखी कहानियों का संसार, व्यक्ति के जिए हुए संसार से अधिक भिन्न तो नहीं होता। कहानियों में जिस प्रकार पात्र निस्संग हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार आधुनिक व्यक्ति और पूरा-पूरा समाज ही निस्संगत की ओर जा रहे हैं। व्यक्ति - व्यक्ति का संबन्ध टूटने लगा है। अपने-अपने परिवेशों से कट जाने से सब एक दूसरे से अपरिचित से रहने लगे हैं, सब प्रकार के व्यवहार औपचारिक बन गये हैं, पूरा का पूरा जीवन ऊब, यान्त्रिकता, भयावहता, अजनबीपन, परायेपन, कुँठा, घुटन, स्वार्थ का बन गया है। इन सबके फलस्वरूप जो निस्संगता समाज में छाई हुई है उसको निकालने केलिए गीता चौधरी की 'आखिरी सवाल' की टीचर के समाज को बदलने की, व्यक्ति को बदलने की कोशिश तो हमें करनी पडेगी।